



## International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2020; 6(4): 172-176

© 2020 IJSR

[www.anantaajournal.com](http://www.anantaajournal.com)

Received: 27-01-2020

Accepted: 18-03-2020

डॉ० वन्दना रुहेला

एसोसिएट प्रोफेसर, जे० वी०  
जैन कॉलेज, सहारनपुर,  
उत्तर-प्रदेश, भारत

## परिवेश में सत्यं शिवं सुन्दरम् की स्थापना - ऋग्वेदोक्त आचरण

डॉ० वन्दना रुहेला

DOI: <https://doi.org/10.22271/23947519.2020.v6.i4c.1831>

**संक्षेपिका -**

मानव का उसके परिवेश के साथ सामजस्यपूर्ण सहअस्तित्व ही विश्व के कल्याण का आधार है, तथा सत्यं शिवं सुन्दरम् की अवधारणा की पूर्णता है। सत्य हमें किसी भी वास्तविकता के सभी आयामों से परिचित कराता है। तथ्यात्मक रूप में प्राप्त ज्ञान से विवेक बुद्धि उत्पन्न होती है तथा तदनुसार शुभाचरण के द्वारा शिवत्व की स्थापना होने से सुन्दरता का आधान स्वतः ही हो जाएगा। भारतीय संस्कृति के मूलाधार, विश्व के सर्वप्रथम प्रकट ज्ञान-पुञ्ज वेदराशि में परिवेश के प्रति मानव के आचरण के आदर्श प्रस्तुत किये गए हैं। प्राकृतिक परिवेश तथा सामाजिक परिवेश में मानव के आचरण को सत्यं शिवं सुन्दरम् के परिप्रेक्ष्य में देखना प्रस्तुत शोध पत्र का विषय है। इसमें यह अनुसंधान करने का प्रयास किया जा रहा है कि वेदानुमत आचरण करने से वर्तमान समय की पर्यावरणिक, पारिस्थितिक, पारिवारिक तथा सामाजिक समस्याओं का निराकरण संभव है।

**कूट शब्द:** सत्यं शिवं सुन्दरम्, वेदराशि, परिवेश, मन, आचरण

**प्रस्तावना**

वस्तुतः वेद ज्ञान की अगाध निधि हैं, जिनमें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित ज्ञान सम्यक्तया निरूपित हुआ है। वैदिक ऋषियों ने जागतिक आचार-विचार से लेकर पारलौकिक परमात्मतत्त्व, मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों से लेकर, सर्वोत्कृष्ट प्रज्ञा के चरमोत्कर्ष मोक्ष सम्बन्धी ज्ञान की उपस्थापना की है। तपोपूत ऋषियों द्वारा जगत् में 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की पूर्णता के आधारों को अपनी दिव्य मनीषा से प्रतिष्ठित करते हुए – तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु<sup>1</sup> तथा मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः<sup>2</sup> इत्यादि श्रुति-प्रतिपादित सिद्धान्तों का उपदेश दिया गया क्योंकि मन के शिवसंकल्पवान् होने से मन की प्रवृत्तियों का शोधन निश्चय ही हो जाता है। शुद्ध मन परिवेश में किसी भी प्रकार के दूषण की कल्पना भी नहीं कर सकता। यह मन मनुष्य के बंधन और मोक्ष का कारण है- बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मनः<sup>3</sup>

यह मन 'ज्योतिषां ज्योतिरेकम्' है<sup>4</sup> अतः इसकी ज्ञानरूपता सिद्ध हो जाती है। 'यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च'<sup>5</sup> मन विशिष्ट-ज्ञान का जनक है, सम्यक् ज्ञान कराने वाला है तथा धैर्यरूप है। वैदिक ज्ञान प्रवृत्ति एवं निवृत्ति-मार्ग, श्रेय और प्रेय, मुक्ति तथा बन्धन दोनों में ही उपादेय है। अतः सम्यक् ज्ञान पूर्वक शुभसंकल्पात्मक मन से प्रेरित आचरण के द्वारा संसार भी सुन्दर बन जायेगा। इसमें किञ्चित् मात्र भी सन्देह नहीं है।

Corresponding Author:

डॉ० वन्दना रुहेला

एसोसिएट प्रोफेसर, जे० वी०  
जैन कॉलेज, सहारनपुर,  
उत्तर-प्रदेश, भारत

बालक जन्म लेते ही जिस वातावरण में आता है वह परिवार, समाज और प्रकृति है। वस्तुतः प्रकृति प्रथम स्थान पर है क्योंकि पञ्चतत्त्वों से ही यह शरीर निर्मित है<sup>6</sup>, और प्रकृति प्रदत्त उपादानों से ही इसका पोषण होता है। मानव का पोषण, संवर्धन, संरक्षण करने वाले पञ्चतत्त्व जिससे यह भौतिक शरीर बना है 'आकाश, वायु, अग्नि, जल', और 'पृथिवी' है। पृथिवी पर अवस्थित इस जड़-जंगम जगत् में मनुष्य ही विवेकशील प्राणी है। अतः उसी का दायित्व है कि वह इस कड़ी को सुरक्षित रखे।

परिवेश का शाब्दिक अर्थ है- 'परितो विशतीति परिवेशः'। 'परि' उपसर्गपूर्वक 'विश्' धातु से 'परिवेश' शब्द व्युत्पन्न होता है। इसे ही 'वेष्टन' अथवा 'परिधि' कहा गया है। आकाशादि मनुष्य को आवृत करते हैं, इसलिए इसकी 'परिधि' संज्ञा भी युक्तियुक्त है।<sup>7</sup>

इस समस्त परिवेश में वह सन्तुलन जो 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की प्रतिष्ठा कर सके, दो दिशाओं में वाञ्छित है - पोषणकर्त्री प्रकृति के प्रति उसका आचरण तथा मानव का मानव के प्रति आचरण। परिवार और समाज में रहने का आदर्श वैदिक ऋषियों द्वारा हजारों वर्ष पूर्व स्थापित किया गया है। जीव जगत् के प्रति सम्मान तथा संरक्षण की भावना का यहाँ पदे-पदे प्रकटन किया गया है। आकाश पिता है तथा पृथिवी माता है।<sup>8</sup> इससे सुन्दर सम्बन्ध भला और क्या हो सकता है? क्योंकि जब पृथिवी को माता तथा द्यौ को पिता कह दिया गया है जो समस्त पारिस्थितिकी-तन्त्र को अप्रत्यक्ष रूप से संरक्षण प्रदान करता है। पृथिवी पर वन, पर्वत, वनस्पति, जीव-जन्तु आदि 'प्राकृतिक-परिवेश' तथा परिवार और समाज में उपस्थित 'मानवीय-परिवेश' मानव जीवन का आधार है। मानवीय शैक्षणिक जीवन का प्रारम्भ गुरुकुलीय शिक्षा-पद्धति से होता था, जहाँ विभिन्न नैतिक मूल्यों के साथ प्रकृति के प्रति 'प्रेम, करुणा, संरक्षण' और 'सहअस्तित्व' के संस्कार जीवन के प्रारम्भ काल में ही प्राप्त हो जाते थे। अथर्ववेद में कहा है- "तुम सब का जल पीने और भोजन करने का स्थान एक हो-

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्ते सह वो युनज्मि।

सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः॥<sup>9</sup>

यह है परस्पर सामञ्जस्य का आधार। इसी प्रकार वनस्पतियों से किसी भी प्रकार की हिंसा का निषेध किया गया है। अथर्ववेद का ऋषि कहता है कि परमापिता परमात्मा समस्त प्राणियों, वनस्पतियों आदि की रक्षा करता है-

सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः ।  
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ॥<sup>10</sup>

वैदिक समाज में प्रकृति मानव से सर्वथा सम्पृक्त रही है और इस प्रकृति के संवर्धन तथा संरक्षणार्थ यज्ञों का अनुष्ठान वैदिक ऋषियों की परम्परा रही है, जिसका आज भी अनवरत निर्वहन किया जा रहा है क्योंकि यज्ञ संसार का श्रेष्ठतम कर्म है - 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'। यज्ञाग्नि इस जगत् में प्रवाहित ऊर्जा का प्रतीक तथा स्रोत है। इसलिये विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में 'अग्निमीळे पुरोहितम्' के रूप में अग्निदेव की उपासना सर्वप्रथम की गयी है। देवो दानाद्वा<sup>11</sup> इस निर्वचन के आधार पर आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी 'देव' सिद्ध होते हैं। ये सब मनुष्य के कल्याणार्थ कार्य करते हैं। देवता के रूप में इन्हें देखना सत्य है। इस सत्य से आकाशादि की महत्ता और इनका हमारी रक्षार्थ सामर्थ्यवान् होना स्पष्ट है। प्राकृतिक शक्तियों के केन्द्र रूप में वैदिक ऋषियों की स्तुतियाँ इनकी मानव कल्याण के प्रति श्रद्धा का ही निवेदन है।

'प्रकृति-संरक्षण' शब्द वर्तमान समय की उपज है। ऋषियों की वाणी में प्राकृतिक शक्तियों की स्तुति और रक्षा की भावना में 'प्रकृति-संरक्षण' तथा 'सह-अस्तित्व' आदि अन्तर्निहित हैं।

जीवन के आधार आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी आदि के सत्य को सम्यक्तया ज्ञात करना तदुपरान्त इनका संरक्षण, संवर्धन आदि से शिवत्व की भावना का विस्तार करना ही वैदिक परम्परा का परमधेय रहा है। इसी प्रकार पारिवारिक, सामाजिक जीवन में सुख सामञ्जस्य के लिये नैतिक मूल्यों के आचरण से कल्याणकारी व्यवहार तथा फलस्वरूप सुन्दर जीवन को प्राप्त करना, वस्तुतः यही सुख के सोपान हैं। वेदों में 'ऋत' तथा सत्य को बहुत महत्त्व दिया गया है। वेदों के अनुसार सृष्टि का मूल ही 'ऋत' और 'सत्य' है -

ऋतं च सत्यं चाभीद्वात्तपसोऽध्यजायत।  
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽर्णवः॥<sup>12</sup>

प्राकृतिक सत्य यथा - सूर्य का प्रतिदिन उदित होना आदि 'ऋत' की श्रेणी में आते हैं, अर्थात् 'ऋत' वह मूलभूत तत्त्व है जो सतत अपने स्वभाविक रूप में गतिशील रहता है। भारतीय संस्कृति कर्म तथा कर्तव्य प्रदान है, अत एव वेदों में ऋत का बहुत महत्त्व है ऋग्वेद में अग्नि को 'ऋतस्यप्रेषा' तथा 'ऋतस्यधीति' कहा गया है<sup>13</sup> अग्निदेव 'ऋत' तथा 'सत्य' का 'प्रेरक' तथा 'रक्षक'

है। उक्त आधार पर समस्त देव 'ऋत' तथा 'सत्य' के 'प्रेरक' तथा 'रक्षक' सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार वैदिक शान्ति मन्त्र में 'पृथिवी, द्यौ' तथा 'अन्तरिक्ष' की शान्ति अर्थात् संरक्षण की भावना ध्वनित होती है।

**आकाश** - 'शब्दगुणकम् आकाशम्' यह आकाश का लक्षण है। शब्द आकाश में नित्य निवास करते हैं। अतः इस सत्य को जान कर मधुर तथा कल्याणकारी वचनों को ही बोलना चाहिये। ऋग्वेद का भी यही सन्देश है -

या ते जिह्वा मधुमति सुमेधाने देवेषूच्यत उरुचि।

शतपथ ब्राह्मण में द्यावापृथिवी का एक साथ उल्लेख किया गया है।<sup>14</sup> द्यावा-पृथिवी के परस्पर सहयोग से ही वर्षा होती है तथा वर्षा के द्वारा धान्यादि की प्राप्ति होती है। ऋग्वेद में पृथिवी, अन्तरिक्ष से रक्षा की कामना की गयी है-

पञ्च जना मम होत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः ।  
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान्  
॥<sup>15</sup>

द्यावापृथिवी सूक्त में इन्हें विश्व को सुख देने वाले देवता के रूप में वर्णित किया गया है<sup>16</sup>

और द्युलोक एवं पृथ्वी को माता पिता के रूप में समस्त भुवनों की अथवा सभी प्राणियों की रक्षा करते हैं।<sup>17</sup>

**वायु-** 'वायु' शब्द 'वा-गतिगन्धनयोः' धातुसूत्र से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है 'वातीति वायुः' जो वहती है अर्थात् निरन्तर गतिशील रहती है। तर्कसंग्रह में वायु को 'रूपरहितस्पर्शवान् वायुः' कहकर परिभाषित किया गया है।

प्राण के रूप में गृहीत वायु हमारे शरीर में पञ्चवायु के रूप में प्रतिष्ठित है। वेदान्तसार में सबके पृथक्-पृथक् लक्षण दिए गये हैं।<sup>18</sup> वायु के बिना जीवन सम्भव नहीं है। ऋग्वेद में मरुद्गणों से रक्षा की प्रार्थना की गयी है। वायुदेव से व्याधियों का निवारण करने वाली औषधियों को लाने की प्रार्थना की गयी है। वायु को 'पिता, बन्धु' और 'मित्र' के तुल्य हितकारी कहा गया है। प्राण जीवन तत्त्व के भण्डार के रूप में वायु देवता से कल्याण की कामना की गई है -

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः ।  
त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे ॥<sup>19</sup>

**अग्नि** - 'अग्नि' शब्द 'अग्' धातु तथा 'नि' प्रत्यय के मेल से निष्पन्न होता है जिसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है - 'अङ्गति

ऊर्ध्वं गच्छतीत्यग्निः'। तर्कसंग्रहकार ने 'उष्ण स्पर्शवत्तेजः' कहकर 'अग्नि' शब्द को परिभाषित किया है। अग्नि के ऋग्वेद में अनेक रूप बताये गए हैं। सबसे पहले अग्निदेव आकाश में विद्युत् रूप में प्रादुर्भूत हुए द्वितीय रूप 'जातवेदस्' के नाम से पार्थिव रूप में प्रकट हुआ, तृतीय 'वडवानल' समुद्र के जल में उत्पन्न हुई।

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निस्मद्द्वितीयं परि जातवेदाः ।  
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः  
॥<sup>20</sup>

यही अग्निदेव मेघों के मध्य विद्युत् के रूप में गर्जना करते हैं तथा वर्षा में सहायक है। अतः इनको 'बन्धुसम' अर्थात् 'बन्धु के समान' कहा गया है।<sup>21</sup> प्राण-पर्जन्य के रूप में वृक्ष-वनस्पतियों को अंकुरित करते हैं-

अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः  
समञ्जन् ।  
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना  
भात्यन्तः ॥<sup>22</sup>

सूर्य अग्नि का ही रूप है। सूर्य, सविता इत्यादि रूपों में अग्नि की उपासना की गयी है।

**जल** - 'जलति जीवयति लोकानगच्छति भूभ्यादीनीति वा।' (जल+पचाद्यच्) से 'जल' शब्द निष्पन्न होता है। यजुर्वेद में जल को माता का स्वरूप कहा गया है - 'आपोऽस्मान्मातरः' <sup>23</sup> जल को ही पृथिवी का 'रस' कहा जाता है। जल से ही यह समस्त सृष्टि है। अतः यह जल पृथ्वी का रस है। जीवनाधारक तत्व है। जल का रस औषधियाँ है। वनस्पतियाँ पृथ्वी से गृहीत रस को औषधतत्त्व में परिणत कर देती हैं अतः जल औषधियों का रस है।

छान्दोग्योपनिषद् में - 'आपोमयः प्राणः' <sup>24</sup> कहकर जल तत्त्व की प्रतिष्ठा की गयी है। ये जल अन्तरिक्ष में उत्पन्न होते हैं और नदी आदि के रूप में बहते हैं। यही जल नहर और कूप आदि रूप में खोदने से उत्पन्न होते हैं। ये जल झरने आदि के रूप में उत्पन्न होते हैं। अतः इसको वेद में 'खनित्रिम्' कहा गया है। जल दीप्तिमान् है और पवित्र करने वाले है -

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः  
स्वयंजाः ।  
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह  
मामवन्तु ॥<sup>25</sup>

जलों के राजा वरुण देवता है। दिव्य गुणों से सम्पन्न जल से रक्षा की प्रार्थना की गई है। जल को सुखों का मूल

स्रोत कहा गया है। जल से औषधियाँ और आरोग्य की कामना की गई है। जल समस्त विकारों को दूर करने वाले हैं। अतः जल से शुद्ध एवं पवित्र करने की कामना की गई है –

इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि।  
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेष उतानृतम् ॥<sup>26</sup>

**पृथिवी** – ‘प्रथमे विस्तारयतीति’ ‘पृथु-विस्तारे’ धातु से ‘ष्विन्’ सम्प्रसारण, डीषि करने पर ‘पृथिवी’ शब्द निष्पन्न होता है। आचार्य यास्क ने भी निर्वचनशास्त्र में ‘प्रथनात् पृथिवीति’ कहा है। पृथ्वी सभी बीजों की प्रकृति है जो अन्न आदि से समस्त प्राणी जगत का पोषण करती है। पृथ्वी की माता के रूप में उपासना की गई है तथा कल्याण की कामना की गई है।<sup>27</sup> ऋग्वेद में द्युलोक और पृथिवीलोक की एक युगल के रूप में प्रार्थना की गई है। द्युलोक की पिता के रूप में तथा पृथिवीलोक की माता के रूप में कल्पना की गयी है।<sup>28</sup> पृथ्वी पर स्थित नदी, ग्रावा, औषधि, वन इत्यादि की देवता के रूप में कल्पना की गई है। नदियों से अन्नादि प्रदान करने की कामना की गयी है।<sup>29</sup> ग्रावा देवता क्षेत्रों को श्रेष्ठ अन्नादि से संयुक्त करें।<sup>30</sup> इसी प्रकार पृथिवी पर उत्पन्न औषधियों को ‘मातृवत्’ कहा गया है।<sup>31</sup> अरण्यानीसूक्त में वन की देवता के रूप में उपासना की गयी है-

अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि ।  
कथा ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दती ॥<sup>32</sup>

इन सब तत्त्वों के महत्त्व की सत्यता को जानकर इनके प्रति किसी भी प्रकार के दूषण अथवा दूषित करने की प्रवृत्ति उत्पन्न ही नहीं हो सकती। मनुष्य के मन में इनके सम्मान और रक्षण की ही प्रवृत्तिजाग्रत होगी। नदीसूक्त के मन्त्रों से जो स्तुति की गयी है। वह स्तुत्य के प्रति श्रद्धा जाग्रत करती है और श्रद्धा से दूषणरूपी पाप तो जाग्रत हो ही नहीं सकता। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी और पृथिवी के समस्त उपादानों के प्रति स्तुति का और सम्मान का भाव मनुष्य को ऐसा आचरण करने के लिये प्रेरित करता है जिससे इन तत्त्वों में किसी भी प्रकार का दूषण न हो। इस प्रकार के अनेक मन्त्र हैं। वेदों में जल दूषित करने का निषेध किया गया है।<sup>33</sup>

मनुष्य का मनुष्य के प्रति आचरण परिभाषित करने के लिये वेदों में बहुशः मन्त्र है। मनुष्य को सदैव सन्मार्ग पर चलना चाहिये।<sup>34</sup> ईशोपनिषद् में स्पष्टतया धन के त्याग भाव से भोग का उपदेश दिया गया है।<sup>35</sup>

मनुष्य को ज्ञान से सुसंस्कृत भाषा बोलनी चाहिए मैत्री भाव रखना चाहिए <sup>36</sup> क्योंकि अभिमानी की वाणी हमेशा निरर्थक होती है।<sup>37</sup> सूर्या विवाह के प्रसंग में परिवार में

रहकर के अच्छा आचरण करने के अनेक उपदेश प्राप्त होते हैं।<sup>38</sup> शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि हमें मधुरवाणी बोलनी चाहिए।<sup>39</sup> वाक्संयमन के विषय में वाणी को यज्ञ कहा गया है।<sup>40</sup> ऋग्वेद के ‘सांमनस्य सूक्त’ में बहुत सुन्दर मन्त्रों के द्वारा परिवार और समाज के प्रति आचरण को प्रदर्शित किया गया है। समस्त पृथ्वी को ही बन्धु कहा गया है।<sup>41</sup> ऋग्वेद कहता है अकेला खाने वाला पापी है- ‘केवलाघो भवति केवलादिः’ इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ऋग्वेद में ‘प्राकृतिक-परिवेश’ तथा ‘मानवीय-परिवेश’ में आचरण करने की जो रीति बतायी गई है उसके अनुपालन से इन दोनों ही क्षेत्रों में एक सुन्दर संतुलन, और सहअस्तित्व स्थापित किया जा सकता है। इसी से ‘सत्यं शिवं सुन्दरम्’ में कथित परिवेश की सुन्दरता को भी प्राप्त किया जा सकता है।

मानव कल्याण स्वयं में कोई वस्तु नहीं है जो वस्तु की भाँति प्राप्त हो। हर मनुष्य सुखाकांक्षी है किन्तु वह यह भूल जाता है कि यह सुख उसके परिवेश में स्वयं के आचरण से सुरक्षित रहता है।

- वैदिक ज्ञान से सत्यावबोध पूर्वक कल्याणकारी आचरण करने से परिवेश को सुखी तथा सुन्दरता से सम्पन्न किया जा सकता है। ‘प्राकृतिक-परिवेश’ एवं ‘सामाजिक-परिवेश’ में ऋत तथा सत्य आचरण पूर्वक कल्याणकारी कार्यों को किया जाना चाहिए, जो ऋग्वेद में उद्दिष्ट है। आचरण किए जाने से पूर्व समस्त ‘प्राकृतिक’ एवं ‘सामाजिक-परिवेश’ के घटकों के सत्य का उद्घाटन हमारे आचरण को निर्धारित करता है। यथा ‘अश्वत्थ-वृक्ष’ के महत्त्व की सत्यता का ज्ञान होने पर उसका पूज्य होना, हमारे ऋषियों ने जाना तथा अश्वत्थ जैसे वृक्षों, वनस्पतियों के सन्दर्भ में उनका ‘रक्षण’ और ‘संवर्धन’ शिवत्व के रूप में आचरित हुआ। आज जिसे ‘दूषण’ कहा जाता है वही पूर्व में ‘पाप’ से अभिहित होता था। अतः प्राकृतिक-पर्यावरण जैसे जल, वनस्पतियों, नदियों आदि के प्रति वर्जित कार्य, हिंसा आदि पाप की श्रेणी में आते हैं। ऋषि स्पष्टतया कहते हैं कि इनके प्रति हिंसा मत करो। ये सभी देवता माने गए हैं। ये रक्षा में समर्थ हैं मनुष्य इन्हीं से जीवन पाता है। इसीलिए इनकी स्तुति और प्रार्थना की गई है क्योंकि देवता मानने से ही दूषित करने के भाव का समूल निराकरण होता है।

इसी प्रकार और ‘ऋत’ और ‘सत्य’ के आचरण से ‘माता-पिता’ तथा ‘परिवार’ और ‘सामाजिक-परिवेश’ में आचरण की मर्यादा रक्षित होती है तथा इसके अनुरूप कल्याणकारी आचरण से परिवार और समाज में ‘शिवत्व’ की स्थापना होता है। वेदों में प्रदर्शित ज्ञान से वर्तमान समय की समस्याओं का निश्चित निदान सम्भव है। इन

समस्याओं के केन्द्र में 'अज्ञान' ही है और अज्ञान सत्य से पराङ्मुखता अथवा सत्य का बोध न होने से ही होता है। अतः सत्यावबोधपूर्वक तथा शोधित बुद्धि से समस्त दूषणों का निराकरण होने से शिवत्व का विस्तार हो तथा यह समस्त परिवेश सुन्दर हो जाए। यही भावना वैदिक ऋषियों के द्वारा दृष्ट शान्तिमन्त्र से प्रकट होती है -

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः, पृथ्वी शान्तिरापः  
शान्तिरोषधयः शान्तिः।  
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः, सर्वं  
शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः,  
सा मा शान्तिरेधि॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

### संदर्भ सूची

1. यजुर्वेद - 34/1
2. अमृतबिन्दूपनिषद् - 2
3. तत्रैव
4. यजुर्वेद - 34/1
5. यजुर्वेद - 34/3
6. वेदान्तसार, पृष्ठ सं० - 57, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ
7. अथर्ववेद - 12/2/44
8. द्यौर्मपता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे। ऋग्वेद 1/64/3 तथा माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। अथर्ववेद - 121/12
9. अथर्ववेद - 3/30/6
10. अथर्ववेद - 8/2/25
11. निरुक्तशास्त्र - 7/4/15
12. ऋग्वेद - 10/190/1
13. ऋग्वेद - 1/68/5
14. शतपथब्राह्मण - 1/6/3/9 तथा 1/8/3/12
15. ऋग्वेद - 10/53/5
16. ऋग्वेद - 10/160/1
17. उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः।  
सुधृष्टमे वपुष्ये न रोदसी पिता यत सीमभि  
रूपैरवासयत॥ ऋग्वेद - 10/160/2
18. वेदान्तसार, डा० महेश भारती, पृष्ठ - 47
19. ऋग्वेद - 10/137/3 यही प्रसंग - ऋग्वेद - 10/137/6 में द्रष्टव्य है।
20. ऋग्वेद - 10/45/1
21. ऋग्वेद 10/142/0
22. ऋग्वेद - 10/45/4
23. यजुर्वेद - 04/02
24. छान्दोग्योपनिषद् - 6/6/5
25. ऋग्वेद - 7/49/02
26. ऋग्वेद - 10/09/08

27. अथर्ववेद - 6/120/2
28. ऋक्सूक्तसंग्रह, भूमिकाभाग, पृष्ठ - 27, साहित्यबाजार, प्रकाशन, मेरठ
29. ऋग्वेद - 10/75/09
30. ऋग्वेद - 10/76/1
31. ऋग्वेद - 10/97/02
32. ऋग्वेद - 10/146/1
33. मापो ओषधिर्हिंसीः। यजुर्वेद - 6/22
34. ऋग्वेद - 10/57/01
35. ईशोपनिषद् - 01
36. ऋग्वेद - 10/71/02
37. ऋग्वेद - 10/71/05
38. ऋग्वेद - 10/85
39. शतपथब्राह्मण - 01/05/01/18
40. शतपथब्राह्मण - 03/02/01/38
41. ऋग्वेद - 01/164/33